

समयसार, ३९ से ४३ गाथा हैं न ? तीन बोल चले, तीन ! क्या चलता है ? कि यह अन्दर आत्मा है, वह ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन है। उसे नहीं जाननेवाले, राग के भाव की एकताबुद्धि - ऐसा जो अध्यवसाय (है), उसे आत्मा मानते हैं, (वे) अज्ञानी हैं।

श्रोता : विकार की पर्याय को आत्मा मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की पर्याय है न, अध्यवसाय-एकताबुद्धि; भगवान तो अन्दर उस राग से भिन्न है। आहाहा ! वह तो सच्चिदानन्द शुद्ध चैतन्यघन ऐसा तत्त्व है, परन्तु उसका पता नहीं है और यह वस्तु (बात) चलती नहीं है। यह तो क्रियाकाण्ड करो और यह करो और वह करो.. आहाहा ! इससे यहाँ कहते हैं कि कितने ही भगवान आत्मा को ऐसा मानते हैं कि यह राग और पुण्य-पाप से मलिन एकताबुद्धि, वह आत्मा (है।) हमें तो इससे भिन्न कोई आत्मा ज्ञात नहीं होता; इसलिए वही आत्मा है - ऐसा कहते हैं। अज्ञानी ऐसा मानता है। (अज्ञानी की मान्यता के) तीन बोल आ गये हैं।

दूसरा बोल—हमारे तो यह कर्म है, इससे परिभ्रमण की क्रिया होती है, वह कर्म, वही आत्मा है। दूसरा कोई आत्मा अलग है, वह हमें तो ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसा अज्ञानियों का अन्तर का कुतर्क है। आहाहा! कर्म का एक अवयव - अंश पूर्व का, परिभ्रमण का कारण हुआ और उसका अंश परिभ्रमण का कारण होगा, इसलिए यह कर्म है, वही आत्मा है; इससे फिर परिभ्रमण से भिन्न, क्रियावाला आत्मा - ऐसा हमें ज्ञात नहीं होता - ऐसा अज्ञानी अनादि से मिथ्याश्रद्धा के कारण मान रहा है। आहाहा!

श्रोता : इस व्याख्या का उसे पता ही नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार ही नहीं किया न! ऐसा अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु; सत् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का स्वरूप शाश्वत् - ऐसी चीज अन्दर भिन्न है। आहाहा! यह राग की क्रिया और जो एक समय वर्तमान की पर्याय जो है न, पर्याय - अवस्था, उससे अन्दर समीप तत्त्व जो है, वह अखण्डानन्द प्रभु भिन्न है। आहाहा! उसे नहीं जानकर, कर्म को ही आत्मा माननेवाले मूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव अनादि से परिभ्रमण करते हैं। दो बोल हुए। यह (अब) तीसरा बोल।

राग की मन्दता या तीव्रता, वह आत्मा; हमको फिर आत्मा, मन्दराग.. राग मन्द हो शुभरागरूप से.. तीसरा बोल है, तीसरा.. राग मन्द हो या तीव्र हो, उससे भरा हुआ भाव, वही जीव है। यह राग की मन्दता और तीव्रता, यह तो हमें दिखती है। इस राग की मन्दता और तीव्रता से भिन्न कोई आत्मा हमें तो दिखता नहीं। आहाहा! तीन बोल तो हो गये हैं।

यह तो चौथा बोल जरा - चौथा बोल - ऐसा कहते हैं। हैं? **नयी और पुरानी अवस्था..** यह शरीर-शरीर, जीर्ण अवस्था होती है, युवा अवस्था होती है—नवीन (अवस्था), यह अवस्था, वह आत्मा है। अब आत्मा उससे भिन्न है; आहाहा! शरीर, वह आत्मा। क्योंकि शरीर की सभी क्रियाएँ हमारे आत्मा से होती है; इसलिए शरीर की क्रियाएँ, जो कुछ - शरीर जीर्ण हो या पुष्ट हो, परन्तु यह आत्मा, शरीर है; आत्मा, शरीर से भिन्न हमें तो दिखायी नहीं देता - ऐसी अज्ञानी की मान्यता है। आहाहा! (अज्ञानी) अनादि से ऐसा मान रहा है। यह शरीर तो मिट्टी है, धूल है, अजीव है, जड़ है; भगवान तो अन्दर चैतन्य मन्दिर में आनन्दकन्द प्रभु विराजमान है। आहाहा! उसका इसे पता नहीं है; इस कारण शरीर को ही आत्मा (मानता है)। वह परदेशी राजा के अधिकार में ऐसा आता है न, भाई!

ऐसा कि.. क्या कहलाता है ? तीर.. तीर.. तीर यदि जीर्ण हो तो जीर्ण काम करे, भले वह आत्मा अन्दर हो परन्तु जीर्ण काम कर सके - ठीक से काम कर सके नहीं और तीर ठीक से पक्का हो तो आत्मा अन्दर जो हो मार सके, इसलिए तीर वही आत्मा (है), वैसे इस शरीर की अवस्था जीर्ण-मन्द हो, वही आत्मा। आहाहा! यह परदेशी में आता है। भाई! तब तो व्याख्यान बहुत चला था, राजकोट में (संवत्) ८९ में बहुत-अधिक वर्ष हो गये। तीन-तीन हजार लोग! (संवत्) ८९ की साल, सम्प्रदाय में, परदेशी राजा का व्याख्यान चलता था न, (संवत्) १९८९, राजकोट-राजकोट, बाहर दशाश्रीमाली की भोजनशाला में (व्याख्यान चलता था।) तीन-तीन हजार लोग, (हॉल में) समायें नहीं इतने (लोग) थे। (संवत्) ८९ में, पैंतालीस वर्ष हुए। उस समय दृष्टान्त दिया था। अपनी दशाश्रीमाली की भोजनशाला है न बाहर, 'वंडो' कहलाता है न, वंडो। आहाहा!

वह यहाँ ऐसा कहते हैं कि यह शरीर शिथिल होवे तो आत्मा अधिक काम नहीं कर सकता; इसलिए यही आत्मा है। शरीर मजबूत हो तो आत्मा काम एकदम कर सकता है, इसलिए यही आत्मा है। - ऐसा मूढ़ ऐसा मानता है। शरीर जीर्ण हो या शरीर पुष्ट हो; अन्दर भगवान तो आनन्द का नाथ प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु, ज्ञान का सागर, आनन्द का सागर विराजमान है। भाई! तुझे पता नहीं है। आहाहा! इसके भान बिना तेरे जन्म-मरण मितें - ऐसा नहीं है। आहाहा! बापू! चौरासी के अवतार कर-करके (तेरा) कचूमर निकल गया है, इस ऐसी श्रद्धा और ऐसी मान्यता से। आहाहा! तीन बोल हो गये हैं;

यह चौथा—पुरानी और नयी अवस्था - इत्यादि भाव से प्रवर्तमान नोकर्म ही जीव है, क्योंकि शरीर से अन्य अलग कोई जीव दिखायी नहीं देता.. ऐसा अज्ञानी मानता है। है न ? चौथा बोल। भाई! दरबार हमारे पुराने परिचित हैं। 'चूड़ा' के दीवान थे, तब गये न व्याख्यान में, पहले-पहले गये न, ९९ के साल में, तब दीवान थे न वहाँ 'चूड़ा' में। ९९ में पहले परिवर्तन करके विहार में निकले थे न, तब दरबार आते थे, नाम भूल गये हैं.. यह तत्त्व कहाँ (अन्यत्र कहाँ है) ? यह तो जगत की प्रवृत्ति के कारण और इससे भी आगे बढ़कर.. अब दूसरा कहते हैं -

चौथे के बाद, अब पाँचवाँ बोल—कोई यह कहते हैं कि समस्त लोक को पुण्य-पापरूप से व्याप्त करता हुआ कर्म का विपाक ही जीव है.. आहाहा! हमें तो अन्दर

शुभभाव और अशुभभाव हो, इसके अलावा अलग आत्मा ज्ञात नहीं होता; **वही आत्मा है..** ऐसा कहते हैं। आहाहा! शुभभाव, वह पुण्य है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि भाव, वह पुण्य है; हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना आदि पापभाव हैं; अतः हमें तो यह पुण्य-पापरूपी भाव - जो शुभाशुभभाव है, उनसे आत्मा भिन्न है - ऐसा तो हमें ज्ञात होता नहीं। आहाहा! आहाहा! है? **समस्त लोक को पुण्य-पापरूप से व्याप्त करता..** पुण्य करे तो उसे स्वर्गादि मिलें, पाप करे तो नरकादि, परन्तु यह पुण्य और पाप में रहनेवाला, वह आत्मा है। पुण्य-पाप के भाव से भिन्न है - ऐसा हमें ज्ञात नहीं होता। देखो न! आहाहा! अभी आया था न? एक श्रुतसागर दिगम्बर है, वह कहता है कि अभी पंचमकाल में तो शुभयोग ही है। अररर! शुभयोग से भिन्न चीज अभी है ही नहीं (- ऐसा कहता है।) दिगम्बर शान्तिसागर की परम्परा में हुआ। प्रभु! ऐसा कहा यह। यह तो तर्क है, इसके अग्रहले से यह तो (ऐसी मान्यता तो) चली आती है। भाई! शुभभाव - दया, दान, व्रत ये परिणाम और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग - वासना-काम-क्रोध, यह पाप - दोनों से भिन्न कोई आत्मा हमें तो दिखायी नहीं देता। दोनों (शुभाशुभ-पुण्यपाप), वह आत्मा है। आहाहा! है?

समस्त लोक को.. पुण्य-पाप पूरे लोक में पूरा-सब व्यापक है। पुण्य-पाप से स्वर्ग-नरक मिलते हैं न, वही आत्मा है। आहाहा! **पुण्य-पापरूप से व्याप्त करता...** देखो! यह कर्म का विपाक-यह कर्म का पाक (उदय) -फल, शुभ-अशुभभाव, यह पुण्य-पाप, यह कर्म का पाक है; हमें तो वही आत्मा है—ऐसा लगता है, कहते हैं। आहाहा! अभी तो कहते हैं न कि दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, वे धर्म हैं और धर्म का कारण है; उसे ही वे जीव मानते हैं। आहाहा! वह यह दलील है। बाद में सब उत्तर देंगे, यह तो अभी इसकी (-अज्ञानी की) दलील है। **पुण्य-पापरूप से व्याप्त.. कर्म का विपाक..** बस! आहा! भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञान के नूर के पूरे से भरा है; उसे न जानकर, इस पुण्य-पाप भाव को ही आत्मा मानता है; आहाहा! — यह अनादि का ऐसा है। **पुण्य-पापरूप से..** शुभाशुभभाव से अन्य अलग कोई.. देखा? शुभाशुभभाव... शुभ अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह शुभ और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग-वासना, वह अशुभ, इनसे अन्य अलग आत्मा है.. वह तो हमें ज्ञात नहीं देता; हमें तो यह शुभाशुभभाव है, वही जीव है (— ऐसा ज्ञात होता है।) आहाहा! यह पाँचवाँ बोल हुआ न?

(छठवाँ बोल—) कोई कहते हैं कि साता-असातारूप से व्याप्त तीव्र-मन्दत्वगुणों से भेदरूप होनेवाला कर्म का अनुभव ही जीव है... आहा! अन्दर में जो सुख-दुःख की कल्पना का वेदन है, वह जीव है। दूसरा सुख-दुःख की कल्पना से भिन्न अन्दर कोई चीज है, वह तो हमें ज्ञात नहीं होती। आहाहा! सातावेदनीय से अनुकूल संयोग मिले और उसमें कल्पना होवे कि मुझे ठीक है; असाता के उदय से प्रतिकूल संयोग मिले, उसमें लगे कि मुझे ठीक नहीं है; इस सुख-दुःख की कल्पना के अलावा भिन्न चीज हमें तो भासित नहीं होती। आहाहा! अरे! भगवान! क्या करता है यह तू? आचार्य स्पष्टीकरण करते हैं। सब (स्पष्टीकरण) करेंगे। भाई! तू यह मानता है, वह तू अजीव को जीव मानता है। आहाहा! यह शुभ-अशुभाव वास्तव में तो आस्रव हैं, भावबन्ध है, अजीव है। आहाहा! निश्चय से तो वे पुद्गल के परिणाम हैं। भगवान! तेरे परिणाम नहीं हैं; तू तो शुद्ध आनन्द का नाथ है न, नाथ! प्रभु! आहाहा! तू तो ज्ञान का पूर है अन्दर; जैसे पानी का पूर होता है, वह ऐसा (उल्टा) होता है। यह ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द—ऐसा ध्रुव पूर है तू। आहाहा! अरे..रे! किसने विचार किया है? निवृत ही कहाँ है? आहाहा! फुर्सत ही कहाँ है? आहाहा! अन्दर भगवान ज्ञान-स्वभावरूपी दल चैतन्य रसकन्द को आत्मा मानना (चाहिए), उसके बदले यह कहता है—हमारे तो पुण्य-पाप के भाव की—साता-असाता की कल्पना, सुख-दुःख की (कल्पना).. भाव सुख अर्थात् यह कल्पना का सुख, वह आत्मा लगता है। हमें तो इससे भिन्न फिर आनन्दस्वरूप आत्मा तो हमें कहीं दिखता नहीं। आहाहा!

(सातवाँ बोल)—कोई कहते हैं कि श्रीखण्ड की भाँति उभयरूप मिले हुए आत्मा और कर्म, दोनों ही मिलकर जीव हैं.. हमारे तो आत्मा और कर्म - दो होकर जीव है। फिर कर्म अलग और आत्मा अलग.. आहाहा! है? जैसे श्रीखण्ड—दही और शक्कर.. दही और शक्कर होते हैं न श्रीखण्ड में? वैसे यहाँ दही समान कर्म, शक्कर - समान आत्मा, दो होकर यहाँ तो आत्मा है। फिर कर्म से भिन्न अन्दर आत्मा भगवान! आहाहा! ये क्रियाकाण्डी यही मानते हैं न? शुभभाव की क्रियाएँ, वे आत्मा और वह आत्मा का धर्म। आहाहा! यह अज्ञानियों की दलील (है, वह) यही है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा है। श्रीखण्ड की भाँति आत्मा और कर्म, दोनों मिले हुए समस्तरूप से मिले हुए (है)

कर्म से भिन्न अलग कोई जीव दिखाई नहीं देता। सात बोल हुए।

(आठवाँ बोल)—कोई कहते हैं कि अर्थक्रिया में (प्रयोजनभूत क्रिया में) समर्थ—ऐसा जो कर्म का संयोग,.. यह आठों ही कर्मों का संयोग, आहाहा! वह ही जीव है, क्योंकि जैसे आठ लकड़ियों के संयोग से भिन्न अलग कोई पलंग दिखाई नहीं देता,.. पलंग होता है न पलंग? उसके चार पाये और चार ईस.. वह क्या कहलाती है? दो तरफ दो लकड़ियाँ और चार पाये—आठ वस्तु (लकड़ियाँ) है, वह पलंग है। उस पर सोनेवाला जीव फिर अलग है। आहाहा! हमारे तो आठ कर्म हैं, जो उनका संयोग है, वही आत्मा है। आहाहा!

श्रोता : संयोग के अतिरिक्त दूसरा कोई पदार्थ देखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा नहीं; इसलिए तो कहता है न? इसीलिए उसे मानता है न? भाई! कर्म के रजकण (तो) जड़ हैं। प्रभु! तेरी चीज तो अन्दर भिन्न है। वस्तु है, वह तो कर्म का स्पर्श नहीं करती—ऐसी चीज है अन्दर। ज्ञानानन्द प्रभु, प्रज्ञा ब्रह्मस्वरूप प्रभु है। आहाहा! प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! वह प्रभु आत्मा, इस अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दस्वयम्प है; तो उसके बदले तू आठ कर्म के संयोग को ही आत्मा मानता है। कहेंगे, आगे जवाब देंगे।

पलंग, आठ लकड़ियाँ मिलकर पलंग हुआ; हुआ न—वे दो आड़े, दो खड़े चार; और चार पाये.. उससे अन्य कोई जीव दिखायी नहीं देता। इस प्रकार (आठ लकड़ियाँ मिलकर पलंग बना, तब वह अर्थक्रिया में समर्थ हुआ;..) अर्थक्रिया अर्थात् सोने के काम आया। (इसी प्रकार यहाँ भी जानना।) यह आठ कर्मों की स्थिति है साथ में, वही आत्मा (है)। आहाहा! इस प्रकार आठ प्रकार तो यह कहे।

ऐसे-ऐसे अन्य भी अनेक प्रकार के दुर्बुद्धि.. आहाहा! जिनकी बुद्धि खराब (हैं वे) दुर्बुद्धि है; इस प्रकार इस आत्मा को ऐसा मानते हैं। आहाहा! उसने कहा न कि व्यवहार है, सिद्ध को निश्चय होता है। परन्तु फिर १५६ गाथा में तो ऐसा कहा उसे 'व्यवहारे विद्वंस वदुंति'—विद्वान व्यवहार में वर्ते, परन्तु उनका मोक्ष नहीं है। यह सब.. गजब करते हैं। क्योंकि व्यवहार रखा सही न व्यवहार। एक तुलसी ने महिमा की थी, स्थानकवासी ने महिमा की, मन्दिर मार्गी ने की, दिगम्बर ने की। पुस्तक है न? आहाहा!

वहाँ है। वहाँ है, परन्तु परन्तु यह वस्तु ही—अर्थ ही एकदम विपरीत किये हैं। जो समयसार का भाव है, उससे एकदम विपरीत। अब, यहाँ कहे कि स्वामीजी हमें कुछ बतायें, (उनका आशय) ऐसा कि हमने किया, उसके लिये क्या कहते हैं? भाई! हम कैसे कहें तुझे खोटा... ऐसा हमारे कैसे कहना! यहाँ पण्डित पूछने आये थे—यह पुस्तक ऐसे कि स्वामी(जी) के पास आयी होगी तो उसके लिये सब महिमा करते हैं तो स्वामीजी क्या कहते हैं? क्या कहें बापू! आहाहा! यह राग और राग की जो क्रिया है, वह तो व्यवहार और बन्ध का कारण है। वह व्यवहार रखा है न, निश्चय तो सिद्ध में रखा है—तो फिर यहाँ क्या कहा? 'व्यवहारे वटुंति'—वह मूढ़ जीव है। 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरों प्राप्ति करे निर्वाण की'— आहाहा! तो निश्चय सिद्ध को ही है या यहाँ है निश्चय?

भगवान आत्मा.. जैसे पानी और कीचड़ है, उस कीचड़ से पानी भिन्न है; वैसे इन पुण्य-पाप के—राग के मलिन परिणामों से चैतन्य झलहल ज्योति भगवान शुद्ध चैतन्यघन भिन्न है। आहाहा! अरे..! क्या हो भाई? अभ्यास नहीं होता और सिर पर कहनेवाले मिलते हैं, उसकी हाँ.. हाँ.. करके.. निर्णय करने का समय नहीं मिलता। आहाहा! मेरा क्या होगा? मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा? यहाँ से आत्मा तो चला जाएगा; आत्मा तो नित्य रहेगा। वह कहीं नाश हो जाता है? आहाहा! तो, मैंने जो इस प्रकार पर को आत्मा माना तो मैं तो यहाँ पर के संयोग में ही भविष्य में भी रहूँगा.. आहाहा! यह कहते हैं, **परन्तु परमार्थ के ज्ञाता उन्हें सत्यार्थवादी नहीं कहते।** धर्मी सन्त - निश्चय से ज्ञाता, सत्यार्थवादी, ऐसा माननेवाले को कहते हैं कि सत्य कहनेवाले नहीं, झूठ कहनेवाले हैं। आहाहा!

भावार्थ - भावार्थ है न! जीव-अजीव दोनों अनादि से.. एक क्षेत्र में रहे हैं। ऐसे जहाँ भगवान आत्मा है, वहाँ कर्म और शरीर साथ रहे; तथापि कोई एक हुए नहीं। आहाहा! समझ में आया? **संयोगरूप मिले हुए हैं। अनादि काल से ही पुद्गल के संयोग से जीव की अनेक विकारसहित अवस्थाएँ हो रही हैं।** देखा? यह कर्म के संयोग से इसमें (जीव में) विकार अवस्था अनादि से हो रही है। आहा! **परमार्थदृष्टि से देखने पर, जीव तो अपने चैतन्यत्व आदि भावों को नहीं छोड़ता..** भगवान (आत्मा) है, वह चैतन्य है, आनन्द है, ज्ञान है, शान्त.. शान्त अविकारी स्वभाव है। उसकी पर्याय में - अवस्था में भले विकार है (परन्तु) वस्तु स्वयं अपने स्वरूप को नहीं छोड़ती। आहाहा! समझ में आया?

और पुद्गल अपने मूर्तिक, जड़त्व आदि को नहीं छोड़ता.. पुद्गल जड़ है। निश्चय से तो विकारीभाव भी जड़ है। आहाहा! वह उसके स्वभाव को नहीं छोड़ता और यह प्रभु चैतन्यमूर्ति भगवान अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। आहा! ऐसा कहाँ भेदज्ञान? परन्तु जो परमार्थ को नहीं जानते, वे संयोग से हुए भावों को ही.. संयोग अर्थात् कर्म का संयोग, उससे हुए भावों को ही जीव कहते हैं.. यह पुण्य का परिणाम, वह जीव; दया, दान, व्रत के परिणाम आत्मा को लाभदायक—ऐसे अज्ञानी, जड़-पुद्गल के संयोग को अथवा संयोग से होनेवाले भाव को जीव मानते हैं। आहाहा!

क्योंकि परमार्थ जीव का स्वरूप पुद्गल से भिन्न सर्वज्ञ को दिखाई देता है.. सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा होते हैं, उन्हें यह राग से भिन्न सर्वज्ञस्वरूपी (आत्मा) दिखायी देता है। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। सर्वज्ञस्वभाव, सबको जानने-देखने के स्वभाववाला आत्मा है। आहाहा! ऐसा सर्वज्ञ भगवान जानते हैं।

अब, उसे जान, इसलिए कहेंगे—तथा सर्वज्ञ की परम्परा के आगम से जाना जा सकता है.. आगम के वचनों से अन्दर अनुभव करे तो उसे (-आत्मा को) जाना जा सकता है कि इस राग से आत्मा भिन्न है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो, परन्तु वह राग है, वृत्ति का उत्थान है, विकार है, विभाव है, दुःखरूप है; आहाहा! इससे भगवान भिन्न है। इसलिए जिनके मत में सर्वज्ञ नहीं हैं.. जिनके कोई सर्वज्ञ जिनके मत में नहीं है, उन्होंने यह नहीं जाना, कल्पना से सब बातें की हैं। वे अपनी बुद्धि से.. अनेक जान सकते हैं.. अनेक कल्पना करके कहते हैं। उनमें से वेदान्ती.. वेदान्ती एक ही आत्मा सर्व व्यापक (कहते हैं)। वह बात मिथ्या है। इसमें आठ बोल आये हैं न? आठ डाले हैं—मीमांसक, सांख्य, योगदर्शन, बौद्धदर्शन, नैयायिकदर्शन, वैशेषिकदर्शन, चार्वाक, नास्तिकदर्शन आदि मतों का आशय लेकर आठ प्रकार तो प्रगट कहे हैं.. यहाँ ऐसा कहा इन्होंने। और अन्य भी अपनी-अपनी बुद्धि से अनेक कल्पनायें करके अनेक प्रकार से कहते हैं, वह कहाँ तक कहा जाए?

ऐसा कहनेवाले सत्यार्थवादी क्यों नहीं हैं?—ऐसा कहनेवाले झूठे हैं; सच्चे नहीं हैं—इसका उत्तर दिया जाता है।

गाथा ४४

एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति॥४४॥

एते सर्वे भावाः पुद्गलद्रव्यपरिणामनिष्पन्नाः।
केवलिजिनैर्भणिताः कथं ते जीव इत्युच्यन्ते॥

यतः एतेऽध्यवसानादयः समस्ता एव भावा भगवद्भिर्विश्वसाक्षिभिरर्हद्भिः पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वेन प्रज्ञप्ताः संतश्चैतन्यशून्यात्पुद्गलद्रव्यादतिरिक्तत्वेन प्रज्ञाप्यमानं चैतन्यस्वभावं जीवद्रव्यं भवितुं नोत्सहन्ते ततो न खल्वागमयुक्तिस्वानुभवैर्बाधितपक्षत्वात् तदात्मवादिनः परमार्थवादिनः। एतदेव सर्वज्ञवचनं तावदागमः। इयं तु स्वानुभवगर्भिता युक्तिः। न खलु नैसर्गिकरागद्वेषकल्माषितमध्यवसानं जीवस्तथाविधाध्यवसानात्कार्त-स्वरस्येव श्यामिकाया अतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्यविवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खल्वनाद्यनंतपूर्वापरीभूतावयवैकसंसरणलक्षणक्रियारूपेण क्रीडत्कर्मैव जीवः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु तीव्रमंदानुभवभिद्यमानदुरंतरागरसनिर्भराध्यवसानसंतानो जीवस्ततोतिरिक्तत्वे नान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु नवपुराणावस्थादिभेदेन प्रवर्तमानं नोकर्म जीवः शरीरादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु विश्वमपि पुण्यपापरूपेणाक्रामन् कर्मविपाको जीवः शुभाशुभभावादतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु सातासातरूपेणाभिव्याप्तसमस्ततीव्रमंदत्व-गुणाभ्यां भिद्यमानः कर्मानुभवो जीवः सुखदुःखातिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खलु मज्जितावदुभया-तमकत्वादात्मकर्मोभयं जीवः कात्स्न्यतः कर्मणोतिरिक्तत्वेनान्यस्य चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वात्। न खल्वर्थक्रियासमर्थः कर्मसंयोगो जीवः कर्मसंयोगा-

त्खट्वाशायिनः पुरुषस्येवाष्टकाष्ठसंयोगादतिरिक्तत्वेनान्यसय चित्स्वभावस्य विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वादिति।

ऐसा कहनेवाले सत्यार्थवादी क्यों नहीं हैं, सो कहते हैं —

पुद्गलद्रव परिणाम से, उपजे हुए सब भाव ये।

सब केवलीजिन भाषिया, किस रीत जीव कहो उन्हें ॥४४॥

गाथार्थ - [एते] यह पूर्व कथित अध्यवसान आदि [सर्वे भावाः] भाव हैं, वे सभी [पुद्गलद्रव्यपरिणामनिष्पन्नाः] पुद्गलद्रव्य के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं, इस प्रकार [केवलीजिनैः] केवली सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव ने [भणिताः] कहा है, [ते] उन्हें [जीवः इति] जीव ऐसा [कथं उच्यंते] कैसे कहा जा सकता है ?

टीका - यह समस्त अध्यवसानादि भाव, विश्व के (समस्त पदार्थों के) साक्षात् देखनेवाले भगवान (वीतराग-सर्वज्ञ) अरहन्तदेवों के द्वारा, पुद्गलद्रव्य के परिणाममय कहे गये हैं, इसलिए वे चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं हैं कि जो जीवद्रव्य, चैतन्यभाव से शून्य - ऐसे पुद्गलद्रव्य से अतिरिक्त (भिन्न) कहा गया है; इसलिए जो इन अध्यवसानादिक को जीव कहते हैं, वे वास्तव में परमार्थवादी नहीं हैं क्योंकि आगम, युक्ति और स्वानुभव से उनका पक्ष बाधित है। उसमें, 'वे जीव नहीं हैं' यह सर्वज्ञ का वचन है, वह तो आगम है और यह (निम्नोक्त) स्वानुभवगर्भित युक्ति है —

स्वयमेव उत्पन्न हुए राग-द्वेष के द्वारा मलिन अध्यवसान हैं, वे जीव नहीं हैं क्योंकि, कालिमा से भिन्न सुवर्ण की भाँति; अध्यवसान से भिन्न अन्य चित्स्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे चैतन्यभाव को प्रत्यक्ष भिन्न अनुभव करते हैं ॥१॥

अनादि जिसका पूर्व अवयव है और अनन्त जिसका भविष्य का अवयव है— ऐसी एक संसरणरूप क्रिया के रूप में क्रीड़ा करता हुआ कर्म भी जीव नहीं है क्योंकि कर्म से भिन्न अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥२॥

तीव्र-मन्द अनुभव से भेदरूप होने पर, दुरन्त राग-रस से भरे हुए अध्यवसानों की सन्तति भी जीव नहीं है, क्योंकि उस सन्तति से अन्य पृथक् चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥३॥

नयी-पुरानी अवस्थादिक के भेद से प्रवर्तमान नोकर्म भी जीव नहीं है क्योंकि शरीर से अन्य पृथक् चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे उसे प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥४॥

समस्त जगत को पुण्य-पापरूप व्याप्त करता कर्म-विपाक भी जीव नहीं है क्योंकि शुभाशुभभाव से अन्य पृथक् चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे स्वयं उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥५॥

साता-असातारूप से व्याप्त समस्त तीव्र-मन्दतारूप गुणों के द्वारा भेदरूप होनेवाला कर्म का अनुभव भी जीव नहीं है क्योंकि सुख-दुःख से भिन्न अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे स्वयं उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥६॥

श्रीखण्ड की भाँति उभयात्मकरूप से मिले हुए आत्मा और कर्म, दोनों मिलकर भी जीव नहीं हैं क्योंकि सम्पूर्णतया कर्मों से भिन्न अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे स्वयं उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥७॥

अर्थक्रिया में समर्थ कर्म का संयोग भी जीव नहीं है क्योंकि आठ लकड़ियों के संयोग से (— पलंग से) भिन्न पलंग पर सोनेवाले पुरुष की भाँति, कर्मसंयोग से भिन्न अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे स्वयं उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ॥८॥ (इसी प्रकार अन्य किसी दूसरे प्रकार से कहा जाए तो वहाँ भी यही युक्ति जानना ।)

भावार्थ - चैतन्यस्वभावरूप जीव, सर्व परभावों से भिन्न, भेदज्ञानियों के अनुभवगोचर है; इसलिए अज्ञानी जैसा मानते हैं, वैसा नहीं है ।

गाथा - ४४ पर प्रवचन

एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।

केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति।।४४।।

यह समस्त ही अध्यवसानादि भाव है,.. आठ कहे न, आठ वे सभी विश्व के (समस्त पदार्थों के) साक्षात् देखनेवाले (वीतराग-सर्वज्ञ..) जैन परमेश्वर.. आहाहा! अरहन्त देवों द्वारा पुद्गलद्रव्य के परिणाममय गये हैं.. आहाहा! ये समस्त शुभ-अशुभभाव, ये पुद्गलद्रव्य के परिणाम (हैं), जीव के नहीं। आहाहा! यह सुख-दुःख की कल्पना, पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं; प्रभु-जीव नहीं। आहाहा! इसके (-जीव के) होवें तो भिन्न नहीं पड़ें; भिन्न पड़ें, वे इसके नहीं हैं। लॉजिक से-न्याय से पकड़ना पड़ेगा या नहीं? आहाहा! अरे..रे..! अनन्त बार मनुष्यभव मिला, अनन्त बार साधु-दिगम्बर मुनि भी हुआ, परन्तु यह आत्मा अन्दर राग से भिन्न चिदानन्द प्रभु है - ऐसी दृष्टि नहीं की। आहाहा! यह कहते हैं।

पुद्गलद्रव्य के परिणाम.. देखा? पुद्गलद्रव्य के परिणाममय.. ऐसा कहा है। आहाहा! चैतन्यमय नहीं। शुभाशुभभाव, पुण्य-पापभाव, आहाहा! ये पुद्गलद्रव्य के, पुद्गलमय परिणाम, ये जड़ के परिणाम हैं; भगवान चैतन्य ज्योत के नहीं। कठिन बात है, भाई! आहाहा! भगवान जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा कहा है। ऐसे तो भगवान का आधार देकर कहते हैं - इन्हें तो पुद्गलद्रव्य के परिणाममय.. यह शुभाशुभभाव, शरीर, आठ कर्म - ये सब पुद्गलमय परिणाम हैं; आहाहा! ये चैतन्य के परिणाम नहीं हैं, यह चैतन्य की जाति नहीं है। यह पुण्य-पाप और शरीर - यह तो कुजात है। आहाहा! ये तो पुद्गलद्रव्य के परिणाममय.. आहाहा! निमित्त पुद्गल है न? निमित्त के आधीन हुए भाव, ये सब पुद्गलमय है - ऐसा यहाँ कहा है। जैसे, शरीर पुद्गल, आठ कर्म पुद्गल के परिणाम (हैं), वैसे शुभ-अशुभभाव भी पुद्गल के - जड़ के ही परिणाम हैं; वैसे सुख-दुःख की कल्पना, वह भी पुद्गल-जड़ के ही परिणाममय, परिणाममय (है)। आहाहा!

वे चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य.. वे अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, कर्म, शरीर - वे चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं हैं.. आहाहा!

भगवान् चैतन्य ज्योति ज्ञान-दर्शनस्वभाव का प्रभु, वे.. आहाहा! (पुद्गलपरिणामभाव) जीवद्रव्य होने के लिए.. चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य... जीवद्रव्य कैसा? चैतन्यस्वभावमय; भगवान् आत्मा कैसा? चैतन्यस्वभावमय.. चैतन्यस्वभाववाला - ऐसा भी नहीं। चैतन्यस्वभावमय, जानन-देखन स्वभावमय भगवान् आत्मा अन्दर है आहाहा! और ये पुण्य-पाप के भाव (जो कि) पुद्गल परिणाममय (हैं)। यह चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य तो वे पुण्य-पाप के भाव - दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के (भाव), वे पुद्गलद्रव्य के परिणाममय (हैं, इस प्रकार) दोनों को भिन्न कर दिया। आहाहा!

है इसकी पर्याय में होनेवाले, परन्तु इसका स्वभाव नहीं न? भगवान् आत्मा में अनन्त गुण हैं; आत्मा में सच्चिदानन्द-ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता - ऐसे अनन्त गुण हैं, परन्तु वह कोई विकाररूप होवे - ऐसा कोई गुण नहीं है; इसलिए ऐसा कहा कि जीवद्रव्य तो.. चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य, वह पुद्गलद्रव्यमय परिणाम होने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़ता है लोगों को! निन्यानवे (की साल) ३५ वर्ष हुए.. दरबार! चूड़ा पहले, तुम भी चूड़ा कैसे हो? अटक भी ऐसी है चूड़ास में (राखेंगार के वंशवाले हैं।) आहाहा!

यह तो सिद्ध के समान वंशवाला है, प्रभु! आहाहा! सिद्ध की जाति है न? णमो सिद्धाणं - उनके कुल की जातिवाला है प्रभु तो। यह तो शरीर की बात-व्याख्या है न? आहाहा! बात ऐसी मीठी-मधुर बहुत...! भगवान् चैतन्यमय जीवद्रव्य-ज्ञानस्वभावी जीवद्रव्य, आनन्दमय जीवद्रव्य (है), ये सुख-दुःख के परिणाम-पुद्गलपरिणाममय, यह जीवद्रव्य उसरूप होने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा! आहाहा! बहुत सरस बात है! दो-एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर आत्माराम आनन्द का धाम चैतन्यमूर्ति भगवान्.. आहाहा! भगवान्! एक बार सुन तो सही प्रभु! आहाहा! यह चैतन्यमय-चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य.. वे पुद्गल के परिणाममय कहा गया होने से, यह चैतन्यस्वभाव जीवद्रव्य उसरूप होने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा! इस पुण्य के परिणामरूप चैतन्यमय जीवद्रव्य.. पुण्य के परिणाममय - दया, दान के इन पुद्गल परिणाममय, वह जीव स्वयं चैतन्यमय द्रव्य - इन पुद्गल के परिणाममय होने योग्य नहीं है। आहाहा! आहाहा! अभी तो सुनने को ही कभी मुश्किल से मिलता है। पूरे दिन धमाधम धर्म के

बहाने भी यह करो और यह करो, दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो.. अरे प्रभु! यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, सर्वज्ञ की वाणी से.. यह कहा न - सर्वज्ञ भगवान ने ऐसा कहा है। त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वर्तमान की बात है न! आहाहा! वर्तमान सन्त-मुनि कहते हैं न? कि सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में ऐसा आया है। प्रभु! यह शुभ-अशुभभाव और सुख-दुःख की कल्पना का भाव, वह पुद्गलपरिणाममय (है); पुद्गलपरिणाममय (अर्थात्) पुद्गल के साथ तन्मय ये परिणाम, चैतन्यमय जीवद्रव्य होने के लिए ये परिणाम समर्थ नहीं हैं। कहो, पाटनीजी!

श्रोता : इन सब विकारीभावों को पुद्गल कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ओर राम-आत्माराम सच्चिदानन्द प्रभु; एक ओर पुण्य-पाप, काम-क्रोध, शरीर सब पुद्गल जड़। जड़, आहाहा! क्यों? कि यह शुभभाव - दया, दान, व्रत का (भाव हो) परन्तु यह राग कोई अपने को जानता नहीं कि हम राग हैं। यह जानता है? राग जानता है? राग में जानने की ताकत कहाँ है? अतः चैतन्यमय जीवद्रव्य.. राग में जानने की ताकत नहीं - ऐसा जड़, यह चैतन्यमय जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा! न्याय से-लॉजिक से (समझना पड़ेगा न!) आहाहा!

फिर से (लेते हैं) - इसमें कहीं पुनरुक्ति नहीं लगती। आहाहा! समस्त विश्व को देखनेवाले सर्वज्ञ भगवान वीतराग परमात्मा, वर्तमान में तो भगवान सीमन्धर प्रभु महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। यह सामायिक के समय आज्ञा नहीं लेते है? परन्तु इसे कहाँ पता है (कि) भगवान कौन है?

श्रोता : इन श्वेताम्बर के शास्त्र में सीमन्धर का नाम नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर में नहीं है। वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा समवसरण में विराजमान हैं। आहाहा! ५०० धनुष की देह है। वे भगवान, समस्त विश्व को देखनेवाले.. विश्व अर्थात् समस्त पदार्थ-लोकालोक को देखनेवाले.. आहाहा! समस्त पदार्थों के साक्षात्.. प्रत्यक्ष देखनेवाले भगवान वीतराग.. वीतराग, वीतराग-सर्वज्ञ अरहन्तदेवों के द्वारा.. ओहोहो! सन्त, भगवान का आश्रय (आधार) लेकर बात करते हैं। स्वयं कहते हैं, परन्तु यह तो सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे

(हैं) — ऐसे सर्वज्ञ भगवान्.. देखनेवाले भगवान् अरहन्तदेवों द्वारा.. अरिहन्त परमात्मा (द्वारा) आहाहा! पुद्गलद्रव्य के परिणाम कहे गये हैं.. इस पुण्य को, शुभ-अशुभभाव (को पुद्गल परिणाम कहा गया है।) अरे... गजब! नाथ! लोगों को जँचना कठिन! यह पंचम काल-हीन काल उन्हें बाधक है - ऐसा वे मानते हैं। आहाहा! (काल नहीं) तेरी विपरीत दृष्टि बाधक है। आहाहा!

यह पुण्य-पाप के भाव-शुभाशुभभाव, ये पुद्गलद्रव्य के-पुद्गलद्रव्य-पुद्गल वस्तु - अजीव वस्तु के परिणाममय... ये अजीव के साथ परिणाममय तन्मय है ये तो। ये अजीव के साथ तन्मय है - ऐसा कहने में (दिव्यध्वनि में) वीतराग भगवान् अरहन्तदेवों ने कहा है न प्रभु!? आहाहा! वे चैतन्यस्वभावमय.. देखा? वे पुद्गलद्रव्य के परिणाममय हैं; तो भगवान् आत्मा चैतन्यस्वभावमय (है।) ये रागादि अचेतन स्वभाव-पुद्गलमय (हैं) - ऐसा उस (विपरीत) मान्यतावाले को उत्तर देते हैं। वह कहता है कि भाई! पुण्य और पाप के भाव-रागबुद्धि और एकत्व अध्यवसाय, वे जीव (हैं) हमारे; फिर राग और एकत्वबुद्धि से भिन्न आत्मा है - ऐसा हम देखते-जानते नहीं। (तो उससे कहते हैं -) सुन भाई! आहाहा!

विश्व को देखनेवाले अरिहन्त परमात्मा... णमो अरिहंताणं कहे, परन्तु उसे अरिहन्त कौन और कैसे (है) - इसके ज्ञान का कुछ पता नहीं होता। यह किसी पक्ष का शब्द नहीं है - णमो अरिहंताणं। जिन्होंने राग और द्वेष तथा अज्ञानरूपी अरि अर्थात् वैरी को नाश किया और जिन्होंने वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट किया, उन्हें अरिहन्त परमात्मा कहते हैं। आहाहा! उन अरिहन्त परमात्मा-सर्व को देखनेवाले भगवान् ने ऐसा कहा। आहाहा! उन्होंने ऐसा कहा कि पुण्य-पाप के भाव पुद्गलद्रव्यमय होने से और भगवान् (आत्मा) चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य होने से, उन पुद्गलमय परिणाम होने को चेतनमय जीवद्रव्य योग्य नहीं है। आहाहा! दरबार! ऐसी बातें हैं! अभी तो कहीं यह मिले - ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे...रे! वहाँ तक चले गये... दिगम्बर साधु नाम धराकर कि पंचम काल में शुभयोग ही है (अर्थात्) अभी जड़ ही है.. अरेरे! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. (यह क्या करता है?)

प्रश्न : वे सर्वज्ञ को नहीं मानते ?

समाधान : नहीं मानते। सर्वज्ञ का पता नहीं है, बापू! भाई! तीन लोक के नाथ

सर्वज्ञ प्रभु विराजते हैं, भाई! आहाहा! वे राजा थे, सन्त होकर केवलज्ञान प्राप्त किया है प्रभु (ने।) तीर्थकर होते हैं, वे सब क्षत्रिय ही होते हैं। बनिये तीर्थकर नहीं होते। बनिये केवल(ज्ञान) प्राप्त करते हैं परन्तु तीर्थकर नहीं हो सकते; क्षत्रिय ही होते हैं। बनिया मरकर क्षत्रिय होवे, वह तीर्थकर होता है। आहाहा! भगवान क्षत्रिय हैं। ऐसे सीमन्धर भगवान विराजते हैं, सीधे महाविदेहक्षेत्र में अभी विराजते हैं, हाँ! बहुत दूर हैं। वे सर्वज्ञ भगवान समस्त विश्व के जाननेवाले (हैं।) वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य गये थे – इस गाथा के रचनाकार (आचार्य गये थे।) आहाहा! अब इसका भी इनकार करते हैं लो। न, कि यह विश्वसनीय (बात) नहीं है। प्रभु! तू क्या करता है भाई? आचार्य पुकार करते हैं – स्वयं जयसेनाचार्य, देवसेनाचार्य (कहते हैं कि) भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे और यदि आकर उन्होंने यह उपदेश नहीं दिया होता तो हम-मुनिपना कैसे प्राप्त करते? तीन लोक के नाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव विराजमान हैं। आहाहा! उनके पास कुन्दकुन्दाचार्य न गये होते तो हमें यह उपदेश कौन देता – ऐसा कहते हैं। दर्शनसार पुस्तक-शास्त्र है। अरेरे!

यहाँ तो कहते हैं अमृतचन्द्राचार्य, उसका – कुन्दकुन्दाचार्य का अर्थ करते हैं। ऐसे सव्वेभावा पोग्गलदव्व परिणाम निष्पन्न – क्यों? उन्होंने कहा केवलीजिणेहि भणीया – है न? केवलीजिणेहि भणीया – सर्वज्ञ परमेश्वर केवली जिनेश्वर अरिहन्तदेव ने कहा है। है? तीसरा पद है, उसका अर्थ यह किया है। ये पुण्य-पाप का शुभ-अशुभभाव, शरीर और आठ कर्म को पुद्गलमय परिणाम कहा है, पुद्गल परिणाममय कहा – ऐसे जिनेश्वरदेव ने कहा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा। अतः परमात्मा कहते हैं कि जो पुद्गलमय है, उसे चैतन्यमय जीवद्रव्य 'उसरूप' होने के लिए कैसे योग्य हो? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव ज्ञान से भरपूर प्रभु, चैतन्यस्वभाव से भरा हुआ भगवान (है), वह पुद्गल के परिणाममय होने के लिए योग्य कैसे होगा? बापू! आहाहा! प्रभु! भगवान! यह पुण्य-पाप के परिणाम पुद्गलमयी से तेरी चीज अन्दर भिन्न है। आहाहा! चैतन्य के स्वभाव से, चैतन्य के नूर के तेज से जिसका पूरा पूर्ण भरा है; आहाहा! चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. वह पानी का पूर ऐसे (उल्टा) चलता है। यह चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. ध्रुव, आहाहा! नित्य; जिसका –

चैतन्य ध्रुव प्रवाह है - आहाहा! ऐसा जो भगवान चैतन्य जीवद्रव्य.. यह भगवान ने तो ऐसा कहा है कि वे पुद्गल के परिणाम हैं - व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम हैं, वे पुद्गल परिणाम हैं.. अर..र..र..! गजब बात है! अब अभी तो उन लोगों की पुकार यह है कि व्यवहाररत्नत्रय करते-करते (निश्चय-शुद्धता) होता है। अरे! यह तो अभी व्यवहाररत्नत्रय ही धर्म है, बस! शुभराग! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. बापू! आहाहा! विश्व को देखनेवाले तीन लोक के नाथ का विरह पड़ा भरत में..! आहाहा! उन्होंने - परमात्मा ने तो ऐसा कहा - चैतन्यस्वभावमय आत्मा, उस पुद्गलमय परिणाम-पुद्गल परिणाममय शुभ-अशुभभाव होने के लिए योग्य आत्मा कैसे होगा? आहाहा!

सन्त को केवली भगवान कहते हैं, उनका आधार लेना पड़ा - **केवलीजिणेहि भणीया** है न? तीसरा पद, मूल श्लोक-गाथा। आहाहा! प्रभु सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव ने ऐसा कहा है कि पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव, ये पुद्गल के परिणाममय होने से चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य, वह परिणामरूप कैसे होगा? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

अनन्त.. अनन्त काल भटकते हुए गया, अनादि.. अनादि.. अनादि.. आदि रहित काल, भव.. भव.. भव.. भव.. भव.. भव.. भव.. ऐसा कहीं अन्त नहीं होता भव बिना का.. ऐसे अनन्त भव, प्रभु! ऐसी भ्रान्ति और भ्रम के कारण किये (हैं)। ये पुण्य-पाप के मेरे और ये चैतन्य की जाति के (हैं) - ऐसा मानकर, प्रभु! तूने परिभ्रमण के अनन्त भव किये हैं। आहाहा! अब, अभी सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वर्तमान में तुझे ऐसा कहते हैं, आहाहा! कि पुद्गलद्रव्य के परिणाममय जो पुण्य-पाप के भाव (हैं), वे चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा!

आत्माराम चैतन्यस्वभाव से भरा हुआ प्रभु! जिसके बगीचे में, जैसे वृक्ष फले हुए होते हैं, वैसे जिसके घर में अनन्त गुण फले हुए भरे हुए हैं अन्दर भगवान में। आहाहा! ऐसा चैतन्यमय जो अनन्त गुणमय प्रभु - ऐसे चैतन्य के अनन्त गुणमय भगवान (हैं), वह पुद्गलद्रव्य, जो जड़ के परिणाम, उसरूप कैसे हो प्रभु? तुझे भ्रम हो गया है। धीरजवान होकर इसका विचार करना चाहिए। बापू! यह अनन्त काल से परिभ्रमण करता है, भाई! यह दुःखी है। यह आनन्दमूर्ति दुःखी है। (इसे) इसके स्वरूप को पता नहीं है; इस कारण

यह पुण्य-पाप के भाव में रहा है, वह दुःखी है। आहाहा! ये दुःख के परिणाम, वे पुद्गल के परिणाम हैं। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्दमय सच्चिदानन्द प्रभु (है), इसके परिणाम तो आनन्दमय-शान्तमय आर्ये। आहाहा! बर्फ के ढेर में से तो शीतलता आती है; वैसे चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड भगवान नित्य शाश्वत् प्रभु है; तू उसका आश्रय ले तो पर्याय में आनन्द आवे - इसका नाम धर्म है। है? ऐसा है दरबार! सूक्ष्म बहुत, बापू! आहाहा!

अरे! सन्तों को ऐसा कहना पड़ा। है? आहाहा! आहाहा! महामुनि-भावलिङ्गी सन्त हैं। जिन्हें निज वैभव-अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप (मुद्रा) प्रगट हुई है; (जो) अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते हैं। आहाहा! सन्त दिगम्बर मुनि और आचार्य हैं - मुनि हैं, आहाहा! परमेष्ठी पद में हैं। उन्हें भी जगत को बताने के लिए कि भाई! ये शुभयोग के परिणाम जो हैं, वे पुद्गल के परिणाममय हैं - ऐसा जिनेश्वर ने-प्रभु ने कहा है न, भाई! अरे..रे! जिनके शास्त्र में यह बात नहीं, वे सर्वज्ञ के शास्त्र नहीं। आहाहा! ऐसा कहा न, यहाँ? सर्वज्ञ का आगम ऐसा कहता है - सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ (ऐसा कहते हैं।) आहाहा! गजब किया है!

ए सव्वेभावा पोग्गल दव्व परिणाम निष्पन्ना - ये पुद्गल-जड़ से प्राप्त है यह विकार। यह विकार अचेतन है तो अचेतन से प्राप्त है; भगवान चैतन्य है, उससे यह प्राप्त कैसे हो? आहाहा! **जो जीवद्रव्य, चैतन्यभाव से शून्य..** क्या कहा? भगवान जीवद्रव्य, जो चैतन्यस्वभावमय है वह, **चैतन्यभाव से शून्य ऐसे पुद्गलद्रव्य से अतिरिक्त (भिन्न)..** आहाहा! चैतन्यभाव से शून्य ऐसे पुद्गलद्रव्य अर्थात् पुण्य-पाप, कर्म आदि; इनसे **भिन्न कहा गया है..** भगवान ने ऐसा कहा है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने दिव्यध्वनि द्वारा-ओम्ध्वनि द्वारा ऐसा कहा है कि **चैतन्यभाव से शून्य ऐसे पुद्गलद्रव्य..** आहाहा! यह शुभ-अशुभभाव, कर्म, शरीर - ये सब चैतन्यस्वभाव से शून्य है; उनमें चैतन्यस्वभाव - जानन स्वभाव नहीं है। आहाहाहा!

भगवान चैतन्यस्वभाव से भरा हुआ पदार्थ है और पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म चैतन्यभाव से शून्य है। यहाँ जब (आत्मा) चैतन्यस्वभाव से भरा हुआ है, तब पुण्य-पाप के भाव चैतन्यस्वभाव से शून्य हैं। समझ में आये ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पहले एक उत्तर में गजब किया है! अभी तो बहुत-सब आयेगा।

यह पाठ में पुद्गलद्रव्य परिणाम कहा न ? **पोग्गल दव्व परिणाम निष्पन्ना** - उससे परिणाम निष्पन्ना / प्राप्त। ये दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव - यह पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न भाव है। प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. जगत को बहुत कठिन पड़ता है, आहाहा! क्योंकि वे चैतन्यस्वभाव से शून्य हैं। उस राग में चैतन्य का स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहाहा!

इस चैतन्यभाव से शून्य - ऐसे शुभाशुभभाव, शरीर, कर्म, राग की एकताबुद्धि का अध्यवसाय, ये सब पुद्गल द्रव्य से अतिरिक्त; चैतन्यभाव से शून्य-ऐसे ये जो पुद्गलद्रव्य.. वे पुद्गलद्रव्य के परिणाम कहा था, उसे सब पुद्गलद्रव्य में डाल दिया। वे पुद्गलद्रव्य ही है। **चैतन्यभाव से शून्य - ऐसे पुद्गल द्रव्य से भिन्न कहा गया है।** आहाहा!

शान्ति से - यह तो.. बापू! यह कोई वार्ता-कथा नहीं है। यह तो भगवत्स्वरूप भगवान की भागवत कथा है। आहाहा! इसने अनन्त-अनन्त काल से कभी इस प्रकार से-प्रेम से बात सुनी नहीं। श्रुत-परिचित आता है न? उसका फिर उनसे अर्थ किया है भाई! श्रुत परिचित अनुभूता, श्रुत अर्थात् ज्ञान; परिचित अर्थात् दर्शन और अनुभूता अर्थात् चारित्र - ऐसा अर्थ किया है, उसने-बलभद्र ने। तूने राग-द्वेष को तूने सुना है; उसका परिचय किया है, उसका तुझे अनुभव है - ऐसा कहना है। आहाहा आहाहा! तूने राग को करना - यह सुना है; राग के परिचय में तू अनन्त बार आ गया है; और अनुभूति राग की, तुझे अनुभव है परन्तु राग से भिन्न भगवान आत्मा.. आहाहा! प्रभु! तूने सुना नहीं, वह तुझे रुचा नहीं, परिचय नहीं किया और अनन्त काल में उसका अनुभव तूने नहीं किया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं!

इसलिए जो इन अध्यवसानादि भावों को जीव कहते हैं, वे वास्तव में परमार्थवादी नहीं हैं आहाहा! क्योंकि आगम, युक्ति और स्वानुभव से उनका पक्ष बाधित है.. भगवान की वाणीरूपी आगम, युक्ति अर्थात् तर्क और न्याय। वे पुद्गल हैं, वे पुद्गल के परिणाम हैं। स्वानुभव और अनुभव से उनका पक्ष बाधित है, तीन से विरोध है, इसका। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)